

## षष्ठ अध्याय

व्यंग्य और भाषा के बरअक्स  
सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में  
काशीनाथ  
सिंह का कथा-साहित्य

## षष्ठ अध्याय

### व्यंग्य और भाषा के बरअक्स सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में काशीनाथ सिंह का कथा-साहित्य

---

व्यंग्य:

आधुनिक काल में गद्य की विविध विधाओं की व्युत्पत्ति हुई। इसी के साथ साहित्य के क्षेत्र में अनेक शैलियों और जीवन दृष्टियों का विकास एवं प्रवर्तन हुआ। साथ ही साथ राजनीतिक परिवेश से उपजी विडम्बना और विसंगति के कारण भारतीय समाज में मानव-मूल्य हाशिए पर चले गए। इसके साथ राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में भी पार्थक्य का सृजन हुआ। आजादी को लेकर देखे गए सपने ध्वस्त हो गए। राजनीति अवसरवादिता का पर्याय बनकर सामने आया। आमजन को छला गया, उनका शोषण किया गया, उन्हें उनके अधिकारों से उन्हें वंचित किया गया। परिणाम यह हुआ कि समाज में मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो गई। राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य पर जो उथल-पुथल मची हुई थी, उसने तत्कालीन रचनाकारों को आंदोलित किया। इन सारी स्थितियों के मध्य जन-प्रतिबद्ध रचनाकारों में ज्यों-ज्यों सामाजिक, आंतरिक अन्तर्विरोधों के प्रति समझ विकसित होती गई, त्यों-त्यों उनकी विचारधारा वैज्ञानिक होती गई और उनकी वाणी से होनेवाला आघात भी निर्मम होता गया। आक्रोश और विद्रोह की अभिव्यक्ति में उनका स्वर अधिक प्रहारात्मक सिद्ध हुआ। इसी प्रक्रिया से व्यंग्य की

उत्पत्ति हुई। साहित्यकार व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करना शुरू कर चुका था क्योंकि वह रूढ़िमुक्त समाज, समानता एवं भाई-चारे वाले समाज का घोर समर्थक था। आरंभिक चरण में व्यंग्य का प्रयोग एक शैली के रूप में हुआ, परंतु वर्तमान समय में यह साहित्य की एक स्वतंत्र विधा है। साहित्य की प्रत्येक विधा चाहे वह कविता हो, उपन्यास, कहानी, नाटक अथवा निबंध हो, व्यंग्य से अछूती नहीं रही है।

### 6.1. व्यंग्य क्या है?

व्यंग्य शब्द अपने परंपरागत अर्थ में प्रतीयमान या ध्वनित का पर्यायवाची माना गया है। परन्तु आज व्यंग्य आज अंग्रेजी के शब्द 'सटायर' का पर्यायवाची बन गया है। और आधुनिक समीक्षा में इसे सर्वत्र इसी रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। व्यंग्य साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है, जिसका लक्ष्य विसंगति एवं विद्रूपताओं का पर्दाफाश कर उन पर प्रहार करना है। व्यंग्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है, जिसमें तमाम साहित्यिक विधाएँ समाहित हो जाती हैं। सभी सर्जनात्मक क्रियाओं की तरह व्यंग्य-निर्माण भी संक्षिप्त प्रक्रिया है, मानसिक, भौतिक और कलात्मक प्रेरणाएँ एक साथ गतिशील रहती हैं। किंतु व्यंग्य का सबसे महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक है-विसंगत यथार्थ। मानवीय घटनाओं एवं कार्य-व्यापारों की विसंगतियों एवं अंतर्विरोध ही व्यंग्य-लेखन के लिए सर्वाधिक उपयोगी एवं अनिवार्य कच्चा माल सिद्ध होता है। विसंगतियों से भरा आज का जीवन

व्यक्ति को मानसिक समस्याओं एवं अमानवीय यंत्रणाओं का शिकार बनाता है। किसी सामान्य व्यक्ति के लिए इन विद्रूपताओं से गुजरना तकलीफदेह हो न हो, परंतु व्यंग्यकार के लिए इनसे बच निकलना और भी कठिन हो जाता है। वस्तुतः व्यंग्य तभी प्रभावी सिद्ध होता है, जब उसका लक्ष्य निश्चित और स्पष्ट होता है। इस संदर्भ में अलैकजेंडर पोप का मंतव्य दृष्टव्य है- “व्यक्तियों को छुए बिना, अमूर्त बुराइयों पर प्रहार करना निरापद हो सकता है, लेकिन वह हवा में धूँसेबाजी करना ही है।”<sup>1</sup> जब तक व्यंग्य का लक्ष्य निर्धारित न हो व्यंग्य निराधार होता है। व्यंग्य का सहारा ही लिया जाता है किसी ऐसे मुद्दे को कहने के लिए जिससे सामने वाला बिना मार खाए चोट महसूस करे और तिलमिला जाए।

व्यंग्य के तीखेपन और उसके आक्रामकता को परिभाषित करते हुए ए. निकोल लिखते हैं-“व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है। इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेशमात्र भाव भी नहीं होता। व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी- कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है, यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। यह युग की समूची परिस्थितियों की धजियाँ किसी को क्षमा किये बगैर उड़ाता है।”<sup>2</sup> अर्थात् जब भी किसी उक्ति को व्यंग्य के माध्यम से कहा जाता है तो उसमें कोई दया-भाव नहीं होना चाहिए, अपने-पराए का बोध नहीं होना चाहिए नहीं तो व्यंग्य अपने लक्ष्य प्राप्ति से भटक सकता है।

### 6.1.1. व्यंग्य की अवधारणा

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी से हुआ है। आजादी के बाद चारों ओर फैली विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, विषमताओं पर प्रहार करने के लिए रचनाकारों को एक बहुत ही सशक्त माध्यम की जरूरत महसूस हुई और इस माध्यम की जरूरत 'व्यंग्य' के सहारे पूरी हुई और यह एकमात्र ऐसा माध्यम बनकर उभरा, जिससे वे उपर्युक्त तमाम चीजों पर भरपूर चोट कर सकते थे।

'व्यंग्य' मनुष्य के जीवन, समाज और साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मनुष्य का जीवन हमेशा से अनेक विसंगतियों से आच्छादित होता रहा है और विसंगतियों के प्रभाव से आक्रोश का पैदा होना भी लाजिमी है। जब हम इस आक्रोश को अभिव्यक्त करते हैं तो कहीं न कहीं हमारी वाणी को 'व्यंग्य' का सहारा लेना ही पड़ता है क्योंकि 'व्यंग्य' के माध्यम से गंभीर से गम्भीर बातों को भी बड़ी सहजता तथा प्रभावशाली तरीके से उद्घाटित किया जा सकता है। व्यंग्य का संबंध समसामयिक परिस्थितियों और जीवन से बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है। व्यंग्य का प्रयोग समय और समाज की सच्चाइयों के प्रति जागरूक हो कर ही किया जा सकता है। यह हमें समाज के यथार्थ के प्रति आँख मूँदने नहीं देता। यह समकालीन जीवन-जगत की प्रतिच्छाया है। व्यंग्य मुख्यतः तीन तत्त्वों के मिश्रण से पूर्ण होता है- 'बुद्धि', 'हास्य' तथा आक्रोश। इनमें सबसे अधिक महत्त्व बुद्धि के

प्रयोग का है, इसके बिना 'व्यंग्य' पूर्ण नहीं हो सकता। 'व्यंग्य' साहित्य और मानव-जीवन के बौद्धिक स्तर पर व्यक्त होनेवाली संवेदना की विशिष्ट प्रक्रिया है। 'व्यंग्य' जीवन के प्रति निराशा या कुंठा की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह तो जीवन की सच्चाइयों का साक्षात्कार है, भले ही उसमें कटु यथार्थ ही क्यों न हो।

### 6.1.2. भारतीय व्यंग्य की अवधारणा

हिन्दी-साहित्य में व्यंग्य की अवधारणा को समझने के लिए व्यंग्य संबंधी भारतीय दृष्टि को समझना बहुत जरूरी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- *“व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठे और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने आपको और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।”*<sup>3</sup>

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं, किन्तु वे हास्य को व्यंग्य का उद्देश्य नहीं वरन् साधन मानते हैं। समय के साथ इसमें थोड़ा बदलाव जरूर आया है। आज व्यंग्य के मूलभूत तत्व के रूप में हास्य को नहीं बल्कि सोद्देश्यता, आक्रामकता को माना गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- *“आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।”*<sup>4</sup>

व्यंग्य का कार्य समाज के हानिकारक तत्वों का परिष्करण है। व्यंग्य किसी भी तरह की विकृति के विरोध में खड़ा होता है। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के संदर्भ में लिखते हैं- *“व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।”*<sup>5</sup>

जीवन की आलोचना करने के बाद ही जीवन का असली अर्थ पता चलता है। और इसके लिए व्यंग्य एक जरूरी अवयव के रूप में मान्य है।

परसाई जी के उक्त विचार उन भ्रान्तियों को दूर करने में समर्थ है, जो व्यंग्य को छिछला या घटिया साहित्य बताते हैं और व्यंग्यकार की निष्ठा पर संदेह करते हैं कि वह केवल शाब्दिक खिलवाड़ करता है अथवा जीवन को हल्केपन से चित्रित करता है। एक उत्तम कोटि का व्यंग्य जीवन की आलोचना करते हुए मनुष्य के विवेक को सक्रिय कर देता है, उसके हृदय में उथल-पुथल मचा देता है, जिससे वह समाज में व्याप्त असमानता, पाखंड और अत्याचार से लड़ने के लिए उद्यत हो जाता है। डॉ. शेरजंग गर्ग व्यंग्य में आक्रामकता को अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ. गर्ग के अनुसार- *“व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगंभीर होते हुए*

भी गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए भी दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए भी तटस्थ लग सकती है, माखौल होते हुए भी बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति और अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की शक्ति अनिवार्य है।<sup>6</sup>

### 6.1.3. व्यंग्य की पाश्चात्य अवधारणा

विदेशी साहित्यकारों ने भी व्यंग्य के विषय में चिंतन कर अपने-अपने मत व्यक्त किए। व्यंग्य की महत्ता क्या है, इसे समझने के लिए चीनी व्यंग्यकार लू-शुन द्वारा दी गई व्यंग्य की परिभाषा ही काफी है- “सत्य व्यंग्य का प्राणतत्व है। यह आवश्यक नहीं कि लिखा गया घटित सत्य ही हो..... जो कुछ हो, वह वैसा हो कि असंभव न लगे। यही कारण है कि व्यंग्य में न तो धोखेबाजी होती है और न ही बुराई, न इसमें रहस्य की परतें खुलती हैं, न ही असाधारण ढंग की चौंकाऊ घटनाएँ। यह संभव है कि बेहद सामान्य होने की वजह से हम ऐसी घटनाओं को विस्मृत कर देते हों..... पर ये घटनाएँ प्रायः घटती ही रहती हैं।”<sup>7</sup>

लू-शुन की उपर्युक्त परिभाषा से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि व्यंग्य अपने सही रूप में समाज-सापेक्ष होता है। व्यंग्य अपने समय के अवांछित यथार्थ को नंगा कर देता है। व्यंग्य पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए प्रो. सदरलैंड अपनी ‘इंग्लिश सटायर’ नामक पुस्तक में लिखते हैं- “व्यंग्यकार का कार्य न्यायाधीश की भांति न्याय पालन कराने का तथा शिष्ट



समाज की मर्यादाओं की रक्षा करने का है। उसका कार्य नर-नारियों को नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं अन्य कसौटियों पर खरे उतरने के लिए सचेत करने का है।”<sup>8</sup>

अर्थात् व्यंग्य को सदैव सोद्देश्य एवं समाजोन्मुख होना चाहिए। व्यंग्य का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए तथा व्यंग्यकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह निर्भय एवं निष्ठावान हो कर व्यंग्य का रूपायन करे।

व्यंग्यकार समाज का प्रहरी होता है, जो समय-समय पर समाज में आनेवाले खतरों के प्रति सजग रहता है और समाज को उन खतरों के प्रति आगाह करता रहता है। कहा जा सकता है कि वह अंधेरे में दीपक की भाँति समाज को सही पथ दिखलाने का कोशिश करता है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। व्यंग्यकार की दृष्टि निष्पक्ष होनी चाहिए एवं स्थित्यानुसार स्वयं की कमियों के प्रति भी उसे निष्ठुर होना चाहिए। इस संदर्भ में व्यंग्यकार आर्थर पोलाड की युक्ति बहुत सटीक जान पड़ती है- “इसका (व्यंग्य का) उद्देश्य अपने पाठकों को निंदा एवं समालोचना में प्रवृत्त होने के लिए जगाना है और यह काम वह उन्हें परिहास और अभिहास्य, अपमान, क्रोध और घृणा की विविध भावात्मक अवस्थाओं में भटका करके पूरा करता है।”<sup>9</sup> जब तक किसी वस्तु या तत्व की आलोचना संपूर्णता में न हो तब तक उसका सुफल प्राप्त नहीं होता। अतः वस्तु की पहचान करने में व्यंग्य एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

एक उच्चकोटि के व्यंग्यकार को अपने समय और समाज का सच साफ-साफ दिखाई और सुनाई पड़ता है अर्थात् उसमें अपने युग की समझ अपेक्षित है।

## 6.2. व्यंग्य और भाषा के साथ सामाजिक यथार्थ का अन्तर्संबंध और

### काशीनाथ सिंह का कथा-साहित्य:

भाषा के साथ अगर व्यंग्य का तालमेल सही बैठ जाए तो फिर उस भाषा की मारक क्षमता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। वैसे भी साहित्य के क्षेत्र में किसी बात को अचूक तरीके से कहने के लिए व्यंग्य का सहारा लेना बहुत ही जरूरी हो जाता है। व्यंग्य के माध्यम से बड़ी-से-बड़ी बात बड़ी ही आसानी से कही जा सकती है। व्यंग्य और भाषा का संबंध सामाजिक जीवन से जुड़ा हुआ है। इसकी अनुपस्थिति में समाज की कल्पना करना एक जटिल कार्य है। व्यंग्य के बरअक्स जब भी भाषा आगे की ओर बढ़ती है, गंभीर से गंभीर मुद्दे को बड़ी ही आसानी के साथ जज़ब करती जाती है। वैसे यथार्थ को सहज रूप में व्यक्त करने की प्रक्रिया में भाषा का रूप व्यंग्यात्मक हो जाना लाजिमी ही है।

चूंकि हमारा समाज प्रत्येक धर्म, जाति और संस्कृति को महत्व देता आया है और ऐसा हमारा संस्कार भी है। इसलिए कोई भी बात जो किसी धर्म, जाति, संस्कृति और राजनीति से जुड़ी हो और उसके नकारात्मक तत्वों को दर्शाना जब जरूरी हो जाए तो यह कार्य साहित्यकार के हाथों में जाता

है कि वह अब अपनी भाषा और साहित्य के माध्यम से उक्त समाज के अवांछित पहलुओं को जनता के सामने प्रेषित करे। किंतु यह कार्य बड़ा ही दुरूह होता है। परन्तु साहित्यकार अपने कर्तव्यबोध को समझते हुए उन नकारात्मक असामाजिक तत्वों का चित्रण अपने साहित्य में करता है और इसके लिए उसे व्यंग्य का सहारा लेना पड़ता है। साहित्यकार समाज का पथ-प्रदर्शक होता है और जरूरत के मुताबिक समाज का परिष्कार करना उसका सामाजिक कर्तव्य होता है।

स्वतंत्रता के पहले भी कथा-साहित्य में व्यंग्य देखने को मिलता है। स्वातंत्र्य-पूर्व हिंदी के गद्य-साहित्य में, विशेषकर नाटक तथा निबंधों में व्यंग्य का जादू लोगों के सिर चढ़ कर बोलता नज़र आता है। स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में व्यंग्य का विकास उन्नत रूप में हुआ है। उदाहरणार्थ हम यशपाल की 'चार आने', 'महादान', उपेन्द्रनाथ अशक की 'नासूर', 'पिंजरा', 'बेबसी', अमृतलाल नागर की 'एक था गाँधी', 'जय-पराजय', विष्णु प्रभाकर की 'रहमान का बेटा', 'धरती अब भी घूम रही है', भगवतीचरण वर्मा की 'इंस्टालमेंट', 'प्रायश्चित', 'दो बाँक', रांगेय राघव की 'गदल' आदि कहानियों का नाम ले सकते हैं, जिनसे विविध सामाजिक यथार्थ संपृक्त हैं और उस यथार्थ को चित्रित करने के लिए उन्हें व्यंग्य का सहारा लेना पड़ा है।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी में व्यापक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रता से पूर्व कहानी सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और साम्यवादी प्रवृत्तियों को चित्रित करती दिखाई देती है। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर

हिन्दी कहानी कई आंदोलनों में बँटी हुई है। इन आंदोलनों के कारण ही स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार अपनी पूर्ववर्ती परंपरा को तोड़ कर विशुद्ध कहानी की स्थापना की ओर अग्रसर हो पाए। नये कहानीकारों ने 'अनुभव की प्रामाणिकता' और यथार्थ के चित्रण पर बल दिया है। स्वतंत्रता के बाद नये कहानीकारों में राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, अमरकांत, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, विष्णु प्रभाकर आदि का नाम लिया अदब से जाता है, जिन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक-यथार्थ को चित्रित करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया। इनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ क्रमशः 'आत्मा की आवाजें', 'राजा निरबंसिया', 'आर-पार की माला', 'भूदान', 'हत्यारे', 'कुलटा', 'चीफ की दावत', 'ठेका' आदि हैं, जिनमें व्यंग्य का स्वरूप साफ-साफ देखने को मिलता है। इसके बाद का समय साठोत्तरी के नाम से जाना जाता है। इस दौर के कुछ कहानीकार आगे चलकर जनवादी कहानी एवं समकालीन कहानी आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर बन कर उभरते हैं। साठोत्तरी कहानी आंदोलन के कुछ प्रमुख कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, काशीनाथ सिंह और महेन्द्र भल्ला का नाम सर्वोपरि है।

व्यंग्य के लिए रचनाकार की भाषा का मारक होना बहुत ही जरूरी है। काशीनाथ सिंह का व्यंग्य मारक क्षमता से लैस है क्योंकि उनके पास कबीर की ही तरह लोकभाषा की शक्ति है। काशीनाथ सिंह की कलम समकालीन व्यवस्था और उसकी विसंगतियों पर खूब चली है। इस क्रम में

उनकी भाषा तो मारक है ही, साथ में उसमें व्यंग्य का समावेश कर काशीनाथ सिंह ने रचना को पाठक-वर्ग के बीच लोकप्रिय बना दिया है और सत्ता वर्ग की बखिया उधेड़ कर रख दी है, जिससे कई लोग तो छटपटाते रह जाते हैं और कई बार उनकी रचना और उनकी भाषा पर बेतुके सवाल करते हैं, जिनका कोई वास्तव में आधार ही नहीं होता है। जिस भाषा का प्रयोग कर वे समाज के ठेकेदारों पर व्यंग्य करते हैं, वह भाषा उन्होंने लोक-संस्कृति से ही ली है। लोक उनके कथा-साहित्य की धुरी तो है ही यह उसकी परिधि भी है।

काशीनाथ सिंह की भाषा पर विचार करें तो हम पायेंगे कि उनके लेखक के पास एक टटकी, खिलंदड़पन और लोक-संपृक्तता से ओत-प्रोत भाषा है। संदीप लोटलीकर से बातचीत करते हुए कमला प्रसाद लिखते हैं-  
“काशीनाथ सिंह ने प्रचलित भाषा को तोड़ने का काम किया है। वे लोक-जीवन की भाषा लेते हैं। श्लील-अश्लील, भद्र-अभद्र का ज्यादा सोच-विचार नहीं करते। जो लोग काशीनाथ की भाषा पर आक्षेप करते हैं वे गैर-रचनात्मक हैं।”<sup>10</sup> काशीनाथ सिंह की रचनाओं में एक नई भाषा का स्थापना देखने को मिलती है जो उनके पहले के रचनाकारों में देखने को नहीं मिलती है। काशीनाथ सिंह की भाषा लोक-जीवन की भाषा है, जिसे लिखा नहीं, बतियाया जाता है और काशीनाथ सिंह लिखते नहीं बल्कि अपनी ‘कहन’ शैली के माध्यम से पाठकों से सीधा संवाद करते हैं। काशीनाथ सिंह की भाषा बदलती दुनिया की चमक-दमक को परे रख एक ऐसे अंदाज में दिखाई

देती है, जिसमें गाँव-जवार की भाषा एक नया रूप प्राप्त कर लेती है। उक्त संदर्भ में प्रमोद कुमार पाण्डेय लिखते हैं- “काशीनाथ सिंह का लेखन गाँव-जवार की बोली-वाणी से संचालित होता है। उनकी भाषा में जिंदगी और जिंदादिली से बहे हुए भाव अनिवार्य रूप से मौजूद हैं। ग्लोबल दुनिया में उनकी भाषा ग्लोबल नहीं, गर्वीली है। उसमें जीवन हू-ब-हू रूप में मौजूद है जिसमें असल जीवन साँस लेता है। हँसी-मजाक, भदेसपन, व्यंग्य-विनोद, टिटकारी, चुहलपन, गाली-गलौज...खिलंदड़ेपन के अंदाज से सरोबार भाषा को अगर असल रूप में न देखा जाए तो लगेगा कि अरे यह तो किशोरोचित हरकतें हैं, जिन्हें बुढ़ापे में काशीनाथ अंजाम दे रहे हैं।”<sup>11</sup> काशीनाथ सिंह की रचना गाँव-जवार की बोली-वाणी से निर्मित होती है और वे बड़ी ही आसानी से बड़े से बड़े मुद्दों को अपनी भाषा और व्यंग्य के माध्यम से कह जाते हैं। काशीनाथ सिंह की रचनाएं पाठक वर्ग में इसलिए खासा लोकप्रिय बन जाती हैं।

### 6.2.1. काशीनाथ सिंह की कहानियों में व्यंग्य की स्थितियाँ

कहानियों का सरोकार समाज से सीधे-सीधे रहा है। प्रत्येक युग में कहानियों ने समाज में अहम् भूमिका का निर्वहन किया है। जब भी समाज में उथल-पुथल मच जाता है, प्रशासन अपने रास्ते से भटकता नजर आता है, भ्रष्टाचार बढ़ जाता है, राजनीति जनता के शोषण का ‘टूल’ बन जाती है तो जनता के बारे में सोचने वाला एक ही वर्ग बचा रह जाता है, जो समाज

के प्रतिबद्ध रचनाकारों का वर्ग है। अपनी रचनाओं के माध्यम से यह वर्ग जनता की आपबीती और विडंबनाओं को सबके सामने लाने का प्रयास करता है। चूंकि लेखक भी समाज का एक अहम् हिस्सा होता है, इसलिए उसे भी कुछ बातों का ध्यान रखना होता है, अर्थात् वह सीधे-सीधे किसी का विरोध नहीं कर सकता। फलतः उसे व्यंग्य का सहारा लेना पड़ता है। पीछे हम देख चुके हैं कि किस तरह सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए तमाम कहानी-आंदोलन के कहानीकारों ने व्यंग्य का गाहे-बगाहे सहारा लिया है। काशीनाथ सिंह अपने तल्ख मिजाज के लिए जाने जाते हैं। काशीनाथ सिंह की कहानियों में विभिन्नता देखने को मिलती है; चाहे वह सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो या फिर राजनीतिक हो। सभी प्रकार की कहानियों में उन्होंने अपने आप को साबित किया है। जहाँ तक बात आती है उनकी कहानियों में व्यंग्य की, तो इन्होंने राजनीति और उससे जुड़े वर्ग के लोगों पर गहरा कटाक्ष किया है। साथ ही समाज में फैली अव्यवस्था के लिए जिम्मेदार लोगों की खबर भी अच्छे से ली है। काशीनाथ सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर समाज तथा राजनीतिक विसंगतियों को अपनी निम्नलिखित रचनाओं में पूरी मर्यादा के साथ निरूपित किया है-‘सदी का सबसे बड़ा आदमी’, ‘अधूरा आदमी’, ‘आदमी का आदमी’ और ‘मौज मस्ती के दिन’ जैसी कहानियों में व्यंग्य को आसानी से लक्षित किया जा सकता है।

‘सदी का सबसे बड़ा आदमी’ कहानी के माध्यम से लेखक ने अपने समय के द्वन्द्व और विसंगति को अत्यंत ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया है, जहाँ शौक साहब अपने तिमंजिले से आते-जाते लोगों के ऊपर थूकते हैं और उन्हें ससम्मान नहा-धुला, खिला-पिला और नये कपड़े देकर हाथी पर बैठा कर विदा करते हैं। लेकिन बड़ी बात यह है कि जिनपर शौक साहब थूकते हैं, वे लोग स्वयं को धन्य समझते हैं। ध्यातव्य है कि शौक साहब भी सब पर नहीं थूकते, वे उन पर थूकते हैं, जो थूके जाने पर उन्हें गालियाँ दें। अंत में उन्हें एक ऐसा मर्द बच्चा सिंकिया पहलवान मिला, जो एक रिक्शेवाला का बेटा था और जो लगातार शौक साहब की पीक से बचता रहा और इस थूकने की ऐय्याशी को खुली चुनौती देता रहा, जिसने दानी बनने की सामंती सोच का विरोध किया जबकि उसे खाने और कपड़े की सबसे ज्यादा जरूरत थी। इस कहानी पर खगेन्द्र ठाकुर का कथन दृष्टव्य है- “दानशीलता के सामंती ढोंग और चाटुकारिता को एक साथ चुनौती देनेवाला यह निःस्वार्थ मेहनतकश जवान सदी का सबसे बड़ा आदमी कहलाने का अधिकारी है।”<sup>12</sup> कहानी में यह व्यक्ति सदी का सबसे बड़ा आदमी कहलाने वास्तव में अधिकारी है, जिसने अपनी बेबसी और लाचारी को दरकिनार करते हुए शौक साहब की सामंती सोच का विरोध किया। आज लोकतंत्र में भी शौक साहब जैसे लोग रहते हैं, जिनका खुला विरोध करना बहुत जरूरी है।



‘अधूरा आदमी’ शीर्षक कहानी में जो व्यंग्य देखने को मिलता है उससे साहित्यकार से लेकर सत्तासीन व्यक्ति की भी बेचैनी बढ़ती हुई दिखती है। काशीनाथ सिंह की व्यंग्यात्मक शैली इतनी धारदार है कि चोट लगने वाला कुनमुना कर रह जाता है। लेखकों के बरअक्स अपनी भी खबर लेते हुए स्वयं काशीनाथ सिंह लिखते हैं-“एक भी ऐसी किताब बता सकते हो, जिसमें किसी आदमी के हलिए का ही वर्णन हो? हो मगर ठीक ढंग से-ऐसे कि पढ़ते समय वह आदमी पूरी तरह पकड़ में आ जाए? तुम लिखते हो कि ‘वह कनखी से देखते हुए बोला’ वह ‘शरमाते हुए मुस्कुराया’ या ‘मूंछों पर ताव देता हुआ खड़ा हो गया’, ‘साले को’, मूंछे तो एक हजार मर्दों के होती हैं; जितने मर्द उतनी मूंछे। तुम किस मूंछ की बात कर रहे हो।”<sup>13</sup> अर्थात् लेखक तो बहुत हैं और रचनाएं भी खूब लिखते हैं लेकिन वे किसके लिए और क्यों लिखते हैं ये खुद उन्हीं को पता नहीं। ‘अधूरा आदमी’ में जो ‘ज्वान’ है उसकी एक आँख नहीं है, इसके साथ ही वह एक हाथ से लूला भी है। यह बात कोई नहीं जानता कि उसकी आंख और एक हाथ कैसे गए, लेकिन कहानी से गुजरने के बाद इस बाद का अंदेशा होता है कि ‘ज्वान’ व्यवस्था से जहां तक हो, लड़ा है। किसी को भी दो-टूक जवाब देने में कभी नहीं हिचका। ‘ज्वान’ की बातें उससे भिड़नेवाले व्यक्ति को अंदर तक झकझोर देती थीं, उसे हिट करती थीं। ज्वान के ही लहजे में- “श्रीमान आप अपने कालर और सेठों के ऊन के मिल की कोट से बाहर निकलिए। हम आप एक ही जैसे आदमी हैं, हम अपने ही शरीर के ढांचे में अपनी ही जुबान से बात

करें” या मित्र आप अमरीका को भी गाली दे रहे हैं, रूस को भी, चीन को भी और भारत को भी। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप किसकी जेब से बोल रहे हैं?”<sup>14</sup>

ज्वान इस व्यवस्था की जड़ तक की जानकारी रखता है और जानता है कि कोई बोल रहा है तो यूँ ही नहीं बोल रहा है, बल्कि उसके अंदर कोई-न-कोई स्वार्थ-भावना छिपी हुई है। ‘ज्वान’ की एक आंख और एक हाथ ऐसे नहीं गए, बल्कि यह उस सड़ी-गली व्यवस्था का ही परिणाम है, जिसे लोकतंत्र कहा जाता है। इस लोकतंत्र में लोक का तो कहीं नाम-ओ-निशान नहीं होता लेकिन उसका ‘तंत्र’ सत्ताधारियों का खिलौना जरूर बन जाता है।

‘आदमी का आदमी’ शीर्षक कहानी में लेखक ने तत्कालीन समाज-व्यवस्था से संतुष्ट आम आदमी को पेश किया है, जो विक्षिप्त हो चुका है और व्यवस्था के प्रति अपना विरोध व्यक्त करता हुआ रास्ते के बीचों-बीच डंडा लेकर खड़ा हो जाता है। ऐसे में राजनीति और उससे जुड़े लोग बाज नहीं आते और उसके डंडे के साथ उसके शरीर को चुनाव-प्रचार का जरिया बना लेते हैं। परंतु वह आदमी इस व्यवस्था पर करारा प्रहार करता हुआ, व्यंग्यात्मक स्तर पर अपनी ‘आंड़ी’ का दर्शन करवाता है।

‘मौज मस्ती के दिन’ कहानी में एक निम्न-मध्यवर्गीय आदमी के जीवन की विडम्बनाओं को चित्रित किया है और ‘पियान’ बने सुखराम की

आपबीती का वर्णन किया गया है, जहाँ बेचारे सुखराम नई नौकरी पाकर अपनी परेशानियों का अंत समझते हैं, लेकिन उन्हें क्या पता कि एक आम आदमी की परेशानियाँ जिंदगीभर उसके पीछे पड़ी रहती हैं। 'सुखराम' के बाँस का कुत्ता उन्हें काट लेता है और वे रोज तिल-तिल कर मरने लगते हैं या यों कहें कि वे मरकर अपनी तमाम जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। रोज कुत्ते के काटने से जुड़ी बातों को पता करते हैं- "पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य प्रायः उस समय तो नहीं मरता, किन्तु स्वयं पागल हो जाता है और कुछ समय बाद मर जाता है। इसी से पागल कुत्ते का काटना सबसे बुरा समझा जाता है। ऐसा मनुष्य पानी से डरने लगता है। इसी कारण पानी नहीं पीता और प्यास से तड़पता है। स्वयं पागल हो जाने के कारण वह भी पागल कुत्ते की भाँति दूसरों को काटना चाहता है..."<sup>15</sup> इस तरह सुखराम मौज मस्ती करने की बजाय उक्त परेशानियों में उलझ जाते हैं अर्थात् लेखक इस व्यवस्था पर व्यंग्य की शैली में यह कहना चाहता है कि इस व्यवस्था में आम आदमी की विसंगतियाँ स्वयं उसी व्यवस्था से ही जुड़ी हुई हैं। अगर उसे खुश होने का मौका भी मिलता है तो इस व्यवस्था तथा इससे जुड़े लोग उसे खुश नहीं होने देते।

### 6.2.2. काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में व्यंग्य की स्थितियाँ:

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में समाज की चिन्ता बृहत् रूप में दिखाई पड़ती है। उनका सुप्रसिद्ध उपन्यास 'काशी का अस्सी' केवल काशी और

काशी की गलियों की कहानी नहीं कहता। बल्कि 'काशी का अस्सी' उपन्यास में तो पूरे भारत की बदलती हुई तस्वीर देखने को मिलती है। इसके साथ ही उपन्यास में समाज के बदलते हुए तमाम पहलुओं पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई है। आलोच्य कथाकार ने काशी पर पड़ रहे भूमंडलीकरण के प्रभाव को पूरी गंभीरता से लिया है तथा बड़ी ही कुशलता के साथ उपन्यास के माध्यम से इस प्रभाव को प्रेषित भी किया है। काशी (बनारस) को मिनी भारत कहा जाता है, क्योंकि यहाँ देश के कोने-कोने से लोग आकर बसे हुए हैं और उनके साथ उनकी सभ्यता और संस्कृति भी यहाँ अपनी तरह की एक 'कॉस्मोपोलिटन' संस्कृति को पनपने देने के लिए पूरा अवकाश देती है।

संख्या में कम होते हुए भी काशीनाथ सिंह के उपन्यास समकालीन समाज की गहरी पड़ताल करते हैं और इसके विविध पहलुओं पर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, चाहे वह धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो या फिर राजनीतिक हो। जहाँ 'काशी का अस्सी' में काशी की बदलती तस्वीर पेश की गई है, उसकी सांस्कृतिक अक्षुण्णता को चोट पहुँचाने की समस्या को सिरजा गया है, वहीं काशीनाथ सिंह के अन्य उपन्यासों यथा '*अपना मोर्चा*' में छात्र-आंदोलन और विश्वविद्यालयीन राजनीति की बातें सामने आती हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत उनके उपन्यास 'रेहन पर रघू' समाज में परिवार की समसामयिक स्थिति देखने को मिलती है। साथ ही अपनी जमीन से बिछड़ने का दुख और बुजुर्गों की दशा का आख्यान यह उपन्यास बयां करता है। काशीनाथ सिंह अपने तलख मिजाज़ और अपनी

बेलौस भाषा के लिए जाने जाते हैं और उन्होंने इसका सबूत उपन्यास लेखन के हरेक दौर में दिया है। उनके नए और टटके उपन्यास 'उपसंहार' में तो महाभारतकालीन भूमि को आधार बना कर समाज के ठेकेदारों, खास कर सत्ता पक्ष की जो खबर ली गई है, वह देखते ही बनती है। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'महुआ चरित' में पितृसत्तात्मक रूढ़ियों पर प्रहार किया गया है।

उपर्युक्त उपन्यासों में समाज की चिंता व्यक्त की गई है, लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि काशीनाथ सिंह ने व्यंग्य के माध्यम से उन तमाम बातों को कह डाला है, जिससे बड़े-से-बड़े सूरमा उसके लपेटे में आ गए हैं। उनके पास बिलबिलाने के अलावा कोई दूसरा चारा भी नहीं है। इसके लिए उन्होंने अपनों की भी परवाह नहीं की है। 'काशी का अस्सी' शीर्षक उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने राजनीतिज्ञों की और धर्म के ठेकेदार तथा पाखंडियों की खूब खबर ली है और उनपर कठोर व्यंग्य से प्रहार भी किया है। धर्मनाथ शास्त्री जो कि ब्राह्मणों के मुखिया हैं, मल्लाहों, खटिकों की उन्नति देखकर अपने तथाकथित धर्म से डगमगा जाते हैं और अपने घर के 'शिवालय' को आधुनिक 'मल-विसर्जन' 'डिवाइस' 'कमोड' के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। यह बात बहुत ही गंभीर व्याख्या की मांग करती है कि ऐसा क्या हो गया शिव की नगरी बनारस शहर को कि अब उस नगरी में ही शिव के स्थान पर प्रश्न-चिन्ह लग रहा है, और वह भी तब जब कि काशी को उनके त्रिशूल की नोक पर स्थापित माना जाता है। वैश्वीकरण की आंधी ने हमारे धर्म तथा हमारी संस्कृति, सबको ही डांवांडोल कर दिया है। अर्थ ही सर्वोपरि बन

चुका है। एक ब्राह्मण भी इस बाजार से इस तरह प्रभावित हो चुका है कि अब उसे पूजा-पाठ करना नहीं भाता क्योंकि उसमें मोटी कमाई के आसार नहीं है और उसे परिवार का भरण-पोषण करने में बहुत असुविधा होती है। यह व्यंग्य धर्मनाथ शास्त्री पर ही नहीं बल्कि समाज के उन तमाम लोगों पर है, जो धर्म के नाम पर अपना धंधा चला रहे हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि काशीनाथ सिंह का कथाकार अपनी रचना में भाषा की एक नई जमीन तोड़ता है। वह अपने कथा-साहित्य को व्यंग्य की पैनी धार से गुजरने को बाध्य करते हैं। यह व्यंग्य एक ऐसी भाषा का रूप ग्रहण करता है, जो एक तरफ हास्य की सृष्टि करता है, तो दूसरी तरफ उसमें हमारे समय की विद्रूपताओं पर दूर तक-देर तक आघात पहुँचाने की क्षमता है। कहना न होगा कि काशीनाथ सिंह का कथाकार जिस भाषा को माध्यम बनाता है, वह वाचिक परंपरा की भाषा है, जिसकी प्रवृत्ति ही है उसकी जीवंतता। यह बहुत ही स्वाभाविक और हमारे इर्द-गिर्द की भाषा है। यह कहना कठिन है कि काशीनाथ सिंह का कथाकार व्यंग्य को भाषा में अनुकूलित करता है या उनकी कथा-भाषा ही व्यंग्य को अपने हिसाब से अनुकूलित करती है। बहरहाल, इतना तो तय है कि इस पूरी कवायद में हमारी सामाजिक व्यवस्था एक 'कैरीकेचर' में परिवर्तित हो जाती है। भाषायी व्यंजनात्मकता में काशीनाथ सिंह कबीर, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद तथा निराला की परंपरा के उचित उत्तराधिकारी प्रतीत होते हैं। उनका कथा-साहित्य इस संदर्भ में अपने समकालीनों में मात्र

कहानीकार ज्ञानरंजन को अपने जोड़ का पाता है। यह अलग बात है कि ज्ञानरंजन की शक्ति और सीमा मध्यवर्ग तथा नगरबोध है, जबकि काशीनाथ सिंह के कथाकार की यात्रा इन तत्त्वों के परे भी जारी रहती है। उनके कथा-साहित्य में व्यंग्य एक टोही विमान है, जो मनुष्य तथा मनुष्यता के विरोधियों-शत्रुओं को पूरी तरह नेस्तनाबूद कर देना चाहता है। नए लेखकों के लिए उनकी भाषा का अनुकरणीय सामर्थ्य एक उदाहरण ही कहा जा सकता है।

**संदर्भ ग्रंथ-सूची:**

1. 'उद्धृत', वीणा दाढे, आधुनिक कथा-साहित्य में व्यंग्य का स्वरूप एवं विकास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-27
2. 'उद्धृत', गर्ग डॉ. शेरजंग, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-02
3. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति-2003, पृष्ठ संख्या-131
4. 'उद्धृत', वर्मा, डॉ. रामकुमार, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-03
5. 'उद्धृत', हरिशंकर परसाई, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-04
6. 'उद्धृत', गर्ग डॉ. शेरजंग, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-04
7. 'उद्धृत', लू-शुन, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-04



8. 'उद्धृत', सदरलैण्ड, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-02
9. 'उद्धृत', पोलार्ड, व्यास डॉ. मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-02
10. दूबे, मनीष (सं.), कासी पर कहन, वर्षा प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ संख्या-479
11. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (अतिथि सं.), संबोधन, अंक-1-2, अक्टूबर-2012, जनवरी-2013, पृष्ठ संख्या, पृष्ठ संख्या-38
12. दूबे, मनीष (सं.), कासी पर कहन, वर्षा प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ संख्या, पृष्ठ संख्या-309
13. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या, पृष्ठ संख्या-182
14. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-186
15. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-248